भारतीय समाज में संस्कारों का सर्वांगीण महत्व

15

डा0 अर्चना मिश्रा*

भारतीय संस्कृति का मुख्य वाहक तथा जनता को एक सूत्र में बाँधने में संस्कृत भाषा ही रही है। सुप्रसिद्ध विद्वान मौनियर विलियम्स ने ठीक ही लिखा है– ''यद्यपि भारत में पांच सौ से अधिक बोलियाँ हैं पर धार्मिक भाषा केवल एक है और धार्मिक साहित्य भी एक है वह भाषा है संस्कृति और वह साहित्य है संस्कृत।''

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। इसके विकास में आध्यात्मिक और भौतिक दोनों ही दृष्टियों का समावेश है। भारत वासी प्रायः ईश्वर के अस्तित्व में आस्था रखने वाले हैं। यहाँ के आचार–विचार खान–पान एवं नित्य कर्मों के सम्पादन में ईश्वर का अस्तित्व झलकता है। हमारे ऋषि मुनियों ने प्रत्येक व्यक्तिगत एवं सामाजिक अनुष्ठानों को धर्म की सीमाओं में बाँधकर रखा है। मनुष्य के विविध संस्कार, सामाजिक कार्य शारीरिक एवं मानसिक उन्नति आदि सभी धर्म के अंग माने गये हैं। इन्हीं धर्मों से ही संस्कारों का अभ्युदय हुआ। भारतीय संस्कृति में संस्कारों का विशेष महत्व माना गया है। माँ के गर्भ से लेकर मृत्यु पर्यन्त सोलह संस्कारों का विधान मिलता है। इन संस्कारों को व्यक्ति के जीवन की उन्नति गुणों की प्रतिष्ठा एवं पवित्रता के साथ ही साथ सर्वांगीण विकास के लिये नितान्त अनिवार्य तत्व माना गया है। संस्कारों का महत्व व्यक्तिगत होने के साथ ही साथ सामाजिक भी था। इन संस्कारों में धार्मिक भावनाओं का भी समावेश कर उन्हें अधिक स्थायी एवं अनिवार्य बना दिया गया। संस्कार युक्त होकर मानव ने व्यक्तिगत सुख को त्यागकर विष्व कल्याण की परिकल्पना को अपनाया है। नीति ग्रन्थों में – ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः सर्वे भद्राणि मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत'' की भावना को अंगीकृत किया गया है।

सम्पूर्वक कष्ञ् भातु से घष्ञ प्रत्यय होकर संस्कार शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है–'' संस्करणं सम्यक्करणं व संस्कारः''[1] अर्थात् परिष्कार करना अथवा भली प्रकार निर्माण करना संस्कार है।

मीमांसा दर्शन का भाष्य करते हुये 'शबरमुनि' लिखते हैं –''संस्कारों नाम स भवति यस्मिन जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य ''[2] अर्थात संस्कार वह प्रक्रिया है जिसके होने से कोई व्यक्ति या पदार्थ किसी कार्य के योग्य हो जाता है।

* *पत्नी श्री दीपक अवस्थी, मो0 राजाजीपुरम (राजापुर), खीरी रोड लखीमपुर–खीरी।*

वैसे तो किसी व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने के लिए शिक्षा, सत्संग, वातावरण, परिस्थिति, सूझ–बूझ आदि अनेक बातों की आवश्यकता है, सामान्यतः ऐसे ही माध्यमों से लोगों की मनोभूमि विकसित होती है। इसके अतिरिक्त भारतीय तत्ववेत्ताओं ने मनुष्य की अन्तः भूमि को श्रेष्ठता की दिशा में विकसित करने के लिए कुछ ऐसे सूक्ष्य उपचारों का भी आविष्कार किया है जिनका प्रभाव शरीर तथा मन पर ही नहीं सूक्ष्म अन्तःकरण पर भी पड़ता है और उसके प्रभाव से मनुष्य को गुण, कर्म स्वभाव की दृष्टि से समुन्नत स्तर की ओर उठने में सहायता मिलती है। इस आध्यात्मिक उपचार का नाम संस्कार है। माता के गर्भ में आने के दिन से लेकर मृत्यु तक की अवधि में समय–समय पर प्रत्येक भारतीय धर्मावलम्बी को सोलह बार संस्कारित किया जाता था जिससे मनुष्य शरीर में रहते हुये भी उसकी आत्मा देवताओं के स्तर की बनती थी।

लोक प्रयोजन पर विचार करते समय हमें यह स्पष्ट होता है कि संस्कार में अन्य देशों की भाँति भारतीयों को भी यह विश्वास था कि वे चारों ओर से ऐसे अतिमानुष प्रभावों से घिरे हुये हैं, जो बुरा भला करने की शक्ति रखते थे उनकी धारणा थी कि उक्त प्रभाव जीवन के किसी भी महत्वूपर्ण अवसर पर व्यक्ति के जीवन में हस्तक्षेप कर सकते हैं अतः वे अमंगल जनक प्रभावों के निराकरण तथा हितकर प्रभावों की प्राप्ति के लिये प्रयन्त किया करते थे। जिससे मनुष्य बिना किसी वाह्य विघ्न के अपना विकास और अभिवृद्धि कर सके। संस्कारों के अनेक अंगों के मूल में यही विश्वास रहे हैं।

जिस प्रकार अशुभ प्रभावों से बचाव का प्रयत्न किया जाता था उसी प्रकार किसी भी संस्कार के अवसर पर संस्कार्य व्यक्ति के हित के लिए अभीष्ट प्रभावों को आमंत्रित और आकृष्ट किया जाता था। आर्यों का विश्वास था कि जीवन का प्रत्येक समय किसी न किसी देवता द्वारा अधिष्ठित है अतः प्रत्येक अवसर पर संस्कार्य व्यक्ति को आर्शीवाद देने के लिये उस देवता का उद्‌बोधन किया जाता था। ''संस्कारों का भौतिक उद्‌देश्य था– धन, धान्य, पशु, दीर्घजीवन, सम्पत्ति, समृद्धि, शक्ति और बुद्धि की प्राप्ति। संस्कार गृहय कृत्य थे और स्वभावतः उनके अनुष्ठान के समय घरेलू जीवन के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं की भावना देवों से की जाती थी। हिन्दुओं को यह विश्वास था कि प्रार्थना के माध्यम से उनकी इच्छाओं को देवता जान लेते हैं और पशु, सन्तान, अन्य, स्वास्थ्य तथा सुन्दर शरीर vkS rh(.kcq) ds: i eamudhifrZd jrsgS[3]

आज जिन संस्कारों का मानव समाज में प्रचलन है उनकी संख्या मुख्यतः सोलह मानी गयी है जैसा कि महर्षि त्यास जी ने लिखा है–

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रिया निश्क्रमोऽन्न–प्राशनं वपन क्रिया।।
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भ क्रिया विधिः।
केषान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्नि परिग्रह।।
त्रेताग्निसंग्रहचश्रैव संस्काराः शोडशस्मृताः।

इस प्रकार महर्षि व्यास ने सोलह संस्कारों का विवेचन किया है। आध्यात्मिकता हिन्दुत्व की प्रमुख विशेषता है और हिन्दू धर्म का प्रत्येक युग उससे घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। हिन्दुओं के इस सामान्य दृष्टिकोण ने संस्कारों को भी अध्यात्म साधना के रूप में परिणत कर दिया। संस्कारों के आध्यात्मिक महत्व की स्पष्ट व्याख्या करना कठिन कार्य है। यह तो उनका अनुभव है जो संस्कारों से संस्कृत हो चुके हैं। संस्कार जीवन की आत्मवादी और भौतिक धारणाओं के बीच मध्यमार्ग का काम देते थे। इस प्रकार हिन्दुओं का विश्वास था कि सविधि संस्कारों के अनुष्ठान से वे दैहिक बन्धन से मुक्त होकर मृत्युसागर को पार कर लेंगे।

यजुर्वेद के अनुसार "जो व्यक्ति विद्या तथा अविद्या दोनों को जानता है वह अविद्या से मृत्यु को पार कर विद्या से अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।"[5]

अतः व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में संस्कारों का अत्यन्त महत्व हैं। संस्कारों के बिना व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होना असंभव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1– 'कर्मकाण्ठ भास्कर' पं0 श्रीराम शर्मा पृष्ठ 125
2– जैमिनी कृत मीमांसा सूत्र 3.1.3
3– 'शां. गृहय सूत्र – 1.14.5
4– 'व्यास स्मृति' – 1.13.14
5– यजुर्वेद – 40.11